भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संग पत्रिका

वर्ष-3, अंक-7	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-20.00
गुरुवार, 12 जुलाई' 79	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 2.00

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

एकेश्वरवाद की स्थापना

इस प्रकार स्वामिश्री सहजानंदजी का एक महत्वपूर्ण प्रमुख धार्मिक सुधार एकेश्वरवाद की स्थापना है। पुराने धर्म और श्रद्धा के साथ जुड़े हुए वहम और अंध श्रद्धा का निरसन भी उतना ही महत्वपूर्ण सुधार कार्य थे यह हम आगे देख चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि स्वामिनारायण महामंत्र का उद्घोष करके श्रीजी महाराज ने अपने आश्रय में आने वालों को क्षुद्र देवी-देवताओं के भय से मुक्त कर दिया।

परंपरा और वैज्ञानिक दृष्टि

श्री स्वामिनारायण का धर्मचक्र परिवर्तन जगत के अन्य धार्मिक सुधारकों से या धर्म का प्रचार-प्रसार करनेवालों से भिन्न प्रकार का और उत्तम कोटि का है। इसमें परमात्म श्रद्धा है किन्तु अंधश्रद्धा के प्रति विद्रोह है। इसमें परम्परा का आदर है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि है, अर्थात् सद असद विवेक है। श्रीजी के धर्म का एक छोर अधमतम् मानी गई जनता में है तो दूसरा छोर उच्चतम अक्षरधाम में है। यह एक जादू है और भक्तों ने तो प्रत्यक्ष अनुभव से स्वीकार कर लिया है। अब धीरे-धीरे प्रजा के अत्यंत शिष्ट और बुद्धिजीवी वर्ग elites and intellectuals में भी स्वामिनारायण धर्म के प्रति निष्ठा और विवेक पूर्ण जागृति आ रही है और यह इष्ट भी है।

श्रीमद् भगवद् गीता ने मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों का महिमागान किया है। भगवान स्वामिनारायण और उनके बाद आज तक के संतों और ब्रह्मस्वरूप महात्माओं का सतत् विचरण स्वामिसम्प्रदाय के निष्काम कर्म योग की साक्षी दे रहे हैं। साथ-साथ भक्ति और ज्ञान का भी समन्वय यहीं है। मुग्ध भक्ति कितनी ही महत्वपूर्ण हो किन्तु इसमें ज्ञान का संचार न हो तो अंधता में पलटने में देर नहीं लगेगी। ठीक उसी प्रकार केवल ज्ञान शुष्क हो जायेगा। भक्ति-ज्ञान का समन्वय आवश्यक है। स्वामिनारायण का यह माहात्म्य अब धीरे-धीरे आलोकित हो रहा है। इसकी गहराइयां नापी जा रही है और इसका विस्तार भी हो रहा है और गुजरात की सीमा छोड़ कर देश और देशान्तरों में माहात्म्य प्रसार हो रहा है। महाराज के जन्म का द्विशताब्दी

वर्ष (सं. 1881) केवल एक समयावधि का ही द्योतक नहीं क्रान्ति का भी द्योतक होगा।

भारत के धर्म संस्कार

भारत के धर्मसंस्कार का एक पूर्ण कटीबद्ध इतिहास है। वेदमाता गायत्री मंत्र से लेकर स्वामिनारायण महामंत्र तक की एक लम्बी वीथि है। श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन पुराण आदि से लेकर जैन, बुद्धादि से धर्म साहित्य द्वारा धर्म संस्कार के एक प्रशस्त राज मार्ग है। इतिहास से हर युग में मंत्रद्रष्टा, दार्शनिक, ऋषि-मुनि, अवतार, राजा, आचार्य आदि ने प्रजा के धर्म संस्कार दृढ़ किये हैं। इन्होंने तप और ज्ञान का उपदेश किया। श्रुति के ज्ञान का विस्तार उपनिषदों में हुआ। सूत्र का विस्तार भाष्य में हुआ और भारतीय अध्यात्म ज्ञान की समृद्धि द्वारा प्रजा का धर्म में परिपाक हुआ। ऋषिओं द्वारा धर्म की मर्यादाएं निश्चित हुई। इन धर्म बन्धनों को राम जैसे राजाओं ने स्वीकार करके गार्हस्थ्य जीवन की ओर समष्टि जीवन को धर्म दृष्टि दी श्री कृष्ण ने तो गीता द्वारा असाधारण भगवत्कार्य किया और सब के उद्धार की दृष्टि दे दी। इह जीवन-व्यवहारजीवन (practical reality और अध्यात्म जीवन (cosmic reality) दोनों का समन्वय सिद्ध किया और ऋत दृष्टि के माध्यम से जगत् को समझने की बात कह कर धर्म का असीम विस्तार किया। भगवान बुद्ध ने सतत विचरण किया। ज्ञान का और मौलिक दृष्टि का माहात्म्य किया। तृष्णा-त्याग का महत्त्व दिखाया। अरण्यों से साधुओं को जगत के मध्य में बिठाया। परिणामस्वरूप घर घर से लोग सन्यास लेने लगे। राजा, रानी, सुकुमार पुरुष-स्त्रियाँ सब सन्यास लेने लगे, किन्तु बुद्ध तत्त्ववाद ने अंततोगत्वा शून्यवाद स्वीकार किया। ब्रह्म का अनन्त रूप वहां शून्य में विलीन हुआ। भगवत्तत्व के धारक होने की क्षमता होने पर भी बुद्ध तथागत (सत्य के ज्ञाता) ही रह गये। कर्मो से पर, बुद्धि से पर एक दैवी शक्ति है और वह ही माया रूप धारण कर के सृष्टि में विचरण कर रही है यह ऋत तत्त्व बुद्धधर्माओं को उपेक्षित ही रह गया। शंकराचार्य ने 'अहम् ब्रह्मास्मि' का मन्त्र दिया। और केवलाद्वैत ज्ञान की स्थापना की। परवर्ती आचार्यो ने परब्रह्म परमात्मा के साथ जीव का विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया। जीव ईश्वर हो ही नहीं सकता है। ईश्वर की कृपा से इनका नित्य संग प्राप्त कर सकता है। केवलाद्वैत की पारमार्थिक भूमिका जहां जीव-शिव एक है वहां भक्ति को स्थान ही नहीं है, किन्तु बाद में श्रीमद् वल्लभाचार्य की वाणी और श्री चैतन्यदेव की भक्ति के परिणाम रूप भगवद्भक्ति दृढ़ हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में कभी ज्ञान, तो कभी भक्ति पर जोर देने वाले सम्प्रदाय हुए किन्तु ज्ञान और भक्ति के समन्वय के रसायण को पिलाकर प्रजा को कर्तव्य कर्म में प्रेषित करने का कार्य भगवान स्वामिनारायण ने अपने निजी ढंग से किया।

विदेश में भी चिंतन हुआ है। सुक्रतु (ग्रीस) और प्लेटो, अरस्तू (ग्रीस) ने सद् विचार- बुद्धियुक्त विचार की नींव डाली। मैं परमात्मा का पयगम्बर (संदेशवाहक) हूँ, ऐसा ईसा और मुहम्मद ने कहा। किन्तु इन दोनों की अधिकतम शक्ति जीर्ण परम्पराओं के खंडन में ही बीती। ईसा के तो प्राण भी इसमें चले गये।

स्वामिनारायण अवतार का योजनाबद्ध कार्य

स्वामिनारायण भगवान ने तो पूर्ण योजना कर के अवतार लिया और अवतार कार्य किया। अपनी इच्छा से प्रकृति को आज्ञा देकर उन्होंने जन्म लिया, इतना ही नहीं अपने साथ अक्षरधाम मुक्त सन्तों और परमहंसों की पूरी फौज को भी

पृथ्वी पर ले आये। इस के अतिरिक्त एक पूरी धर्म परम्परा चलाई और प्रत्येक पीढ़ी में नई नई व्यक्ति जो अपनी विभूति धारण कर रही हैं और अपना mission चला रही है उनका भी निर्माण किया जो अनन्त काल तक चलने वाला है। श्री जी महाराज ने भक्ति की परंपरा आगे बढ़ाई, श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्म का स्वीकार किया।

इस प्रकार भारत की प्राचीन धर्मपरंपरा को नये संदर्भ में सजीव और पुष्ट किया और ऐसा करने में जो आवश्यक परिवर्तन था वह भी किया। वास्तव में इन परिवर्तनों और इनके पीछे महाराज की क्या दृष्टि है यह समझने-समझाने के लिये तो पूरे ग्रन्थ की आवश्यकता है। यहां पूर्व दिया गया एक ही उदाहरण पाठकों की स्मृति में लाना है और वह है यज्ञ का स्वीकार किन्तु इसमें हिंसा का निषेध। यज्ञ का स्वीकार श्रौत-स्मार्त परम्परा का पालन है और अहिंसा नया मौलिक परिवर्तन है।

स्वामिनारायण की विशेषता

किन्तु स्वामिनारायण धर्म की अपनी स्वायत्त विशेषता भी है। यह है अभय। श्रीजी महाराज का आश्रय लीजिए और काल, कर्म, मायादि से मुक्त हो जाईए। श्रीजी महाराज के आश्रितों में मुक्तों, सन्तों, परमहंसों, परम भक्तों ही नहीं थे; ऐसे भी थे जिनमें अधम भाव भी था। किन्तु महाराज का आश्रय लेते ही कोटि जन्मों का कर्म जलकर खाक हो गया और वे भी पवित्र, निर्भय हो गये। 'जीव तू पापी है, माया से बद्ध है, प्रकृति से बाहर निकलना मुश्किल है, आदि उपदेश से निराश मानवजात को अपने जीवन काल में, स्वयं ऐहिक शरीर धारण करते हुए भी महाराज ने आश्वस्त कर दियाः

''मेरा ध्यान कीजिए, स्मरण मेरा कीजिए, आप मेरा कीजिए, गीत मेरे गाइए, दर्शन मेरा कीजिए, पूजा उपासना मेरी कीजिए।''

इस प्रकार भगवान स्वामिनारायण ने निर्भय होकर निर्भयता का वरदान दिया। प्रेमी होकर प्रेम का प्रवर्तन किया। भगवान थे ही अतः भक्ति बढ़ाई। ज्ञानियों के अग्रणी बन कर वचनामृत पिलाया। एक पूरे चैतन्य की ज्योति समग्रप्रजा में फैला दी। 'मैं स्वयं पुरुषोत्तम हूँ' ऐसी दृढ़ प्रतीति उनको थी और अक्षर के माध्यम से समग्र को करवाई। इतना ही नहीं सब को कह दिया-मेरे पास आ जाईए-बहुत जन्मों के बाद नहीं, अभी इसी क्षण मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। अतः स्वामिनारायण केवल एक मार्ग नहीं है, केवल एक सम्प्रदाय नहीं है, प्रत्युत एक चेतना है जो व्यक्ति के त्रिविध ताप को एक क्षण में नष्ट कर के अक्षरधामनिवासी बना देती है। यहां तो–

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

थोड़ा-सा धर्म कीजिए, थोड़ी श्रद्धा रखिये और महाभय से मुक्त हो जाइये। स्वामिनारायण ने भी जैसा कि आगे स्पष्ट किया है पांच वर्तमान पालन का आदेश दिया है किन्तु यह रक्षाकवच है, बेड़ी नहीं है।

दिव्य समाज का निर्माण

स्वामिनारायण भगवान का उद्देश्य पृथ्वी पर एक दिव्य समाज का निर्माण करने का था। ऐसे समाज निर्माण के लिये भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा आदि ने पुराने युग में प्रयत्न किये थे। आधुनिक युग में मार्क्स, गांधी आदि ने प्रयत्न किये हैं। इनको कुछ सिद्धि मिली भी है, किन्तु व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन और समष्टि जीवन और वह भी केवल बाह्य नहीं-भावमय जीवन सुधार कर उस में उच्च मूल्य दृढ़ कर के समाज का नवनिर्माण करना हो तो इनको ईश्वर के आश्रय में ले जाना ही पड़ेगा। भक्ति बिना वृत्ति में पवित्रता

आ ही नहीं सकती और वृत्ति में पवित्रता न हो तो आचरण में शुद्धि नहीं होती है और तब समाज निर्माण की बात मिथ्या है। पुरुषोत्तम ने प्रत्यक्ष होकर भक्ति की ज्वाला प्रगट की और क्षण मात्र में कर्मों के शुष्क पत्तों के ढेर जला दिये। एक का नहीं जो उनके आश्रय में आये उन सबका। इससे स्पष्ट हो गया कि धर्म सबके लिये है।

प्रजा में धर्म के माध्यम से एक उच्च स्तरीय एकता श्रीजी महाराज ने स्थापित की। स्वामिनारायण के आश्रित सब समान, सब निर्भय सब उच्च ! इससे अधिक समाज निर्माण क्या हो सकता है?

श्रीजी महाराज के जन्म धारण करने का उद्देश्य ही यह था। अन्यथा वे तो स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम थे और हैं। यह देश भारतवर्ष पुण्यभूमि है। यहां हर प्रदेश में संतों, भक्तों, ज्ञानियों, तपस्वियों, पुण्यात्माओं एवं महात्माओं ने जन्म लिये हैं किन्तु भगवान श्रीकृष्ण के बाद पिछले 5000 साल में किसी ने यह नहीं कहा, 'मैं पूर्ण पुरुषोत्तम हूं।' यह तो भगवान स्वामिनारायण ने ही कहा। ऐसी बात या तो जो वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम है वह कह सकता है या दंभी, मूर्ख और पागल कह सकता है। दूसरी कक्षा में तो स्वामिनारायण के विरोधी भी इनको नहीं रखेंगे। सहजानंदस्वामी का समग्र जीवन सिद्ध करता है कि वह पूर्ण पुरुषोत्तम ही थे। पूर्व के सब अवतार उनमें निहित थे। अतः वे अवतारों के अवतारी थे। सारे भूमण्डल में धार्मिक भिन्न-भिन्न धर्मों के धुरंधरों का परिचय कीजिए। कभी किसी गुरु ने शिष्य का पूजन नहीं किया है। स्वामी रामानंद स्वामी ने सहजानंद का पूजन किया था, क्योंकि वे उनको पहचान गये थे और उनको सर्वतत्र स्वतंत्र कर दिये थे।

स्वामिनारायण ने जो कुछ कहा और किया वह और कोई करेगा तो लोग उस को पागल ही मानेंगे। किसी की ताकत है जो स्वयं अपनी मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा करें और श्रीकृष्ण की मूर्ति को अपनी ही मूर्ति कहें और अपनी मूर्ति की स्वयं आरती उतारें? मेरी भक्ति करो, मेरी माला पहनो, मैं कहूं ऐसा तिलक करो ऐसी स्पष्ट आज्ञा देने की शक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम की ही होती है। उनकी यहां सशरीर उपस्थिति में ही यह सब कुछ हुआ और लाखों लोग वास्तव में उनका भजन करने लगे इतना ही नहीं मुक्त बन गये।

'स्त्रियों वैश्यास्तथा शुद्रोस्तेऽपि यान्ति परोगतिम्' यह वाणी सिद्ध हो गई।

-क्रमशः

रक्षाबन्धन (राखी का त्यौहार)

श्रावणी पूर्णिमा का दिन अनेक दृष्टि से पवित्र दिन है। उस दिन ब्राह्मण लोग नूतन यज्ञोपवीत धारण करते हैं और बाद में अपने यजमानों को राखी बांधते हैं, गुरु शिष्य को राखी बांधते हैं और बहन भाई को राखी बांधती हैं। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार ने इस दिन को 'संस्कृत दिवस' के रूप में भी घोषित किया है।

श्रावणी पूर्णिमा इस प्रकार एक महान दिन है और वर्षों से भारतवासी इसको त्यौहार के रूप में मनाते आये हैं।

कथा तो ऐसी है कि महाभारत युद्ध के काल से रक्षाबन्धन का प्रारम्भ हो गया। प्रथम राखी पांडव जननी कुन्ती ने अपने पौत्र (अभिमन्यु) के हाथ पर बांधी थी। महाभारत युद्ध चल रहा था। कृष्ण अर्जुन दूर थे और कौरवों ने अपनी सेना का चक्रव्यूह बनाया। कौन यह सात चक्रों को पार कर सकता है? ऐसी क्षमता तो केवल अर्जुन में थी और वह अनुपस्थित था। अर्जुन के वीर पुत्र अभिमन्यु को माता के गर्भ में 6 चक्रों को भेदने

का ज्ञान था। 7वां चक्र भेदना इनको नहीं आता था किन्तु इन्होंने निर्णय किया कि मैं ही जाऊंगा चक्रव्यूह भेदने के लिये। इनकी यह महेच्छा देख कर इनकी रक्षा के लिए भगवती सती माता कुंती जी ने इन के हाथ पर रक्षा बांध दी। यह कहानी लोक प्रचलित है। इसमें कहां तक तथ्य है यह कहना मुश्किल है। पांडव कौरव का युद्ध तो श्रावण में नहीं खेला गया था, तो राखी का त्यौहार श्रावणी पूर्णिमा के दिन क्यों और कब से मनाया जाता है यह कहना मुश्किल है; क्योंकि यह तथ्य कहीं न कहीं इतिहास के गर्भ में छिपा हुआ है किन्तु इस त्यौहार के भीतर जो भावना निहित है वह छिपी हुई नहीं है। वह तो प्रकाशोज्ज्वल और असाधारण है और यह है किसी आत्मीय द्वारा आत्मीय व्यक्ति की रक्षा की भावना !

भारतीय त्यौहार और अन्य देशों के त्यौहार में मूलतः भिन्नता है कि हमारे त्यौहार eat, drink and enjoy के लिये ही नहीं है किन्तु वे धर्ममूल और भावना मूल हैं और इन के पीछे किसी न किसी ऐतिहासिक रोमांचक कथा जुड़ी होती है।

रक्षाबन्धन भी श्रावण की नितान्त मनोहर मंगल वर्षाकारी ऋतु के साथ जुड़ा हुआ त्यौहार है। उस दिन प्रकृति और मानवमन दोनों स्वाभाविक प्रसन्न होते हैं। एक पवित्र उच्च भावना उस दिन हवा में लहराई हुई होती है।

गुरु-शिष्य के, बहन-भाई के और ब्राह्मण-यजमान के सम्बन्ध संसार के पवित्रतम सम्बन्धों में है। गुरु ब्रह्मनिष्ठ, शिष्य जिज्ञासु; भाई पुरुषार्थी, बहन भावनाशील; ब्राह्मण आशीर्वाद देने को तैयार, यजमान स्वीकार ने को तैयार ! यहां लेन-देन भावना मूलक है। गुरु शिष्य का कल्याण चाहता है, बहन भाई का यश और ब्राह्मण यजमान की समृद्धि। अतः यह त्यौहार विशेष रूप से अन्तर की पवित्र भावना के साथ जुड़ा हुआ है। अतः यदि शिष्य गुरु को श्रद्धेय माने, यदि भाई बहन की रक्षा की भावना को स्वीकृत करे, यदि यजमान को श्रद्धा हो तो इसका फल निश्चित मिलने वाला है। गुरु को, बहन को, ब्राह्मण को कुछ सिक्के, वस्त्र, आभूषण आदि-आदि देना वह तो अच्छी भावना पर स्थित किन्तु एक व्यवहार है। सच्ची तो वह भावना है रक्षा की—सुरक्षा की। रक्षा अर्थात् हर भय, हर आपत्ति से रक्षा। आज जब जीवन संघर्ष अत्यन्त उग्र हो गया है तब अंग्रेजी में जिसको security of life कहते हैं उसका अभाव है। आदमी धन इकट्ठा करता है क्यों? कल क्या होगा? किसी को मालूम नहीं है कि कल क्या होगा? जीवन के हर क्षेत्र में यह ही एक प्रश्न चिन्ह है कल क्या होगा? इस प्रश्न से, इस भय से मुक्ति पानी हो तो एक ही आश्रय है और वह समर्थ गुरु का। गुरु कौन हो सकता है? ज्ञानी कवि अखा भगत ने लिखा है—

'धन हरे धोखो नव हरे।'

आपके धन का तो हरण कर ले किन्तु आप का कष्ट न हटा सके वह गुरु नहीं। आपके आजन्म मरण तक का-इतना ही नहीं जन्म-जन्म का कष्ट उठा ले वह गुरु है और आप का आत्यांतिक मोक्ष कर के नित्य अक्षरधाम में बिठा दे वह गुरु है। गुरु जो आपको रक्षा देता है वह केवल एकाध पुरुषार्थ में जय मिले इसके लिये नहीं है, किन्तु आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक हर प्रकार के जीवन में सिद्धि मिले इसके लिये सनातन रूप से सुरक्षित कर देते हैं। किन्तु आजकल विचित्र हाल है। इतना सुख-सुरक्षा देने के लिये गुरु तत्पर हैं और भ्रमितदृष्टि शिष्य हाथ में रक्षा लेकर खड़े हुए गुरु को देखते हुए भी देखते नहीं है; क्योंकि दृष्टि दुन्यवी पदार्थों की ओर इतनी तीव्र रूप से लगी हुई है कि इसके अतिरिक्त संसार में अन्य प्रकल्प है कि नहीं यह भी ज्ञात नहीं है। गुरु तो जैसा कि आगे कहा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब कुछ देने को

तैयार है किन्तु हम यह जानते नहीं हैं। दूसरी ओर ऐसे भी बिरले होते हैं जो गुरु को कह देते हैं कि महाराज ! मुझे पहले तीन पुरुषार्थ तो चाहिए भी नहीं, मुझे चरम और परम मोक्ष ही दो। जब अ.म.मु. प्रागजी भगत को एक बार प्रसन्न होकर मू.अ.मू. गुरु गुणातीतानंद स्वामी ने कहाः 'प्रागजी, तू बम्बई जा और व्यवसाय कर। 60 हजार रुपये की कमाई करेगा। मेरे आशीर्वाद है।' प्रागजी भक्त ने इसके उत्तर में जो कहा था वह अत्यन्त मननीय है। प्रागजी भक्त के शब्द थेः

''स्वामी, 13 वर्ष तक सद्गुरु गोपालानंद स्वामी का समागम किया और आज दिन तक आपकी बातें सुनी किन्तु कभी भी आप दोनों ने स्त्री (काम), धर्म (अर्थ) और मान इष्ट और सुखदायी है ऐसा नहीं कहा। आपकी कृपा से मैं और व्यवसाय में निष्णात हूं किन्तु एक व्यवसाय नहीं आता है। आज आप प्रसन्न ही तो मुझे वह एक व्यवसाय-साधु का व्यवसाय की शिक्षा दो।'' रक्षाबन्धन के इस शुभ दिन पर हमारी एक ही प्रार्थना होनी चाहिए कि गुरु हमें रक्षाबन्धन करे और जीवन में हमारी प्रगति हो और गुरु के शुभाशीषों से हमारा मन प्रागजी भगत जैसा निर्मल बनें ताकि गुरु के पास हम भूल से नकली चीज न मांग बैठे और असली चीज रह न जाय। योगी बापा बार-बार कहते थे कि और फिजूल बातों में मोक्ष की बात रह न जाय। हमें निर्णय करना है कि priority किस चीज को देनी है ! निश्चित अक्षरधाम में स्थायी निवास की बात को।

आज प.पू. ककाजी, प.पू. पप्पाजी और प.पू. स्वामिश्रीजी के रूप में गुरुत्रिपुटी विद्यमान है। उनको हम प्रार्थना करते हैं कि हमें रक्षा बांध कर ऐसे सुरक्षित कर दीजिए कि महाराज की अमृतमयी दृष्टि की किरण हमारे पर पड़े और हम सर्वदा सर्वथा नित्य प्रसन्न रहें, नित्य अक्षरधाम में रहें।

Real Guru

..... Where the question of guidance from a real guru or Sadguru figures prominantly, the question of the chara cteristics of the Sadguru naturally comes up for discussion. Sir Woodroffe, who has written extensively on Tantra points out repeatedly that the Sadguru must have totally conquered his passions and desires and should have rid himself of his ego-sense. Utmost purity of his entire physical and psychical instrument, total transformation of baser nature into refined one and God realisation are the three essential marks of a Sadguru. Lord Swaminarayan in Vachanamrit Gadhada last chapter-27 also insisted that diksha or initiation should be taken only from a sadguru who is nishkami and nirmani. Such a guru is God's representative and he speaks about God and nothing else. He is completely dependent on God. Everything he says is in accordance with the scriptures and the previous Acharyas. A Guru's buisness is to canvass everone to become God conscious.

A genuine Guru never says, 'I am God or I will make you God., He says, 'I am a servent of God and I will make you also a servent of God'. Mark well, a Guru can not be bad. Guru means. 'Genuine guru-Sadguru.' All one has to know is that the genuine guru is simply talking about God and trying to get people to become God's devotees. It he does this he is genuine-Real Guru.

A real Sadguru is like a Mother. The magnanimity of a Gunatit Swaroop or real Sadguru is such that even without

compulsion or coersion or insistence or by making any demands on the disciple, the latter follows the disciplines willingly. The real Guru is an ocean of mercy; He has nothing that he desires in this world. He therefore, does not expect anything for, anybody. He is an exemplary character, appearing to the disciples in the very nature and complexion of His lie. His teachings and movements which arise from love, compassion and charity, enable the sadhaka to have a unique spiritual experience and make him inwardly convinced of the reality of Divine power. He generates in him a creative shraddha and a total and complete trust in the Supramental existence. In short. Guru must enable the sadhaka to have unique spiritual experience and the inner conviction about the reality of God's power, i.e., creative shraddha and full trust. This is the responsibility of a Sadguru,and if he can't do so, he should not give initiation.The possession of Siddhis is not a test nor does it declare the glory of a sage. A real Sadguru never makes an exhibition of miracles or Siddhis. It is not enough if he merely imparts the knowledge, but a real Guru must be capable of shouldering the entire responsibility and of dispelling the doubts of the shishyas and of transforimg their natures into Divine natures and enable them to have Sacchidanand Realisation. Therefore it is very necessary that every one before accepting one as his Guru, according to Gurudev Gunatitanad Swami should consider following three characteristics.

1. He himslef must have attained God realisation and must be pure, humble and must have conquered desires. passion and ego-sense.

2. His Guru's magnanimous powers and qualities should be considerd.

3. What sort of disciples have been trained by him should also be observed.

Therefore millions of oblations to H. D. Shashtriji Maharaj and Yogiji Maharaj who manifested themselves in human forms as the total divinity and accepted innumerable disciples like us without specifying any condition or reservations. Creating favourable condition and atmosphere, they have enabled us with a unique spiritual experience of divinity and Yogic shakti.

In the modern world owing to the development of science people have begun to doubt, to ask questions and to demand some proof for everything. This attitude is not wrong. Such a sadhaka will adhere to a discipline all the more strongly if he is convinced of the truth of the disciplines. Therefore in the case of such a sadhaka the Guru gives some proof by way of experiences in order to make him stick to the path he has chosen. Swami Vivekananda for instance was one of the greatest disciples of this type.He went to Shri Ramakrishna Paramahansa with a mind full of the inquiring spirit as a result of vast reading. But Ramakrishna Paramahansa by his experiences in Tantric and religious practices convinced him and won him over as the most brilliant and leading shishya.

After sucn an experience of divinity or Yogic shakti the Shishya or the disciple must totally surrender to the Master with

complete trust and unshakable faith, respect and adoration. This is known as ananyabhav. Instead of identifying one's own self with the partial vision one has to identify one's self totally and get absorbed with the Divine Master. This is known as Divyabhava. Then inner eye is opened and all the actions movements and preachings of the Sadguru will be felt and perceived as supremely Divine. This is the real Gunatit Bhav, the basis of purity and calmness of the mind. "Janma Karma Cha Me Divyam" (Gita 4-9). Gunatitanand Swami in his talks says that Nirvasnik Bhava or desirelessness can only be attained permanently by such a constant adorative attitude towards the real Sadguru. Some times this attitude is disturbed by sex, wealth, power, ego-sense, ignorant consciousness and inherent baser nature of Avidya, Under the influence of these instincts a disciple works under fear, duality, conflict and insecurity. But in such condition if one remains open to the Master without infringing the conception of Master's Divinity then the real Sadguru by His grace uplifts the disciple and imparts to him the knowledge of Brahman and His powers; so that the disciple is enabled to transcend his baser instincts and egoistic tendencies.

Thus, it is the duty of this sadhaka now that after inner experience and Divyabhava he should permanently accept this transcendent unity with Master which is only possible by honouring and accepting all his actions and movements as Supremely Divine.

The powers of a Gunatit Master or of Divinity can not be easily judged or evaluated by persons who are still clouded with ignorance or whose intellect has not been fully and properly developed. We come across Siddhas or Jivanmuktas who by virtue of Sadhanas in their previous births are born in this world as enlightened soul. To them an attitude of love-intimacy with the Divine and other realised souls become natural and spontaneous. Such Jivanmuktas are very rare.

In the case of other the simplest and easiest course is to begin with childlike innocent receptivity, surrendering and entirely relying on God's power and help. But this act of surrender is not an easy as it might appear. It requires great courage. If surrending is done without courage it just becomes a mechanical task Howerver, when it is done with unshakable faith, the Sadhaka will attin even the unattainable.

These three attitudes of under standing on the part of the sadhak, will help him positively for ever progressive spiritual development, as his first step is correct, right and complete on the fundamental basis of accepting God's power or divine shakti to work out the sadhana or unfolding of the covered sheaths from embodied ignorant self upto the supreme understanding and realisation.

Publised by Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society

A-103, Ashokvihar-III, Delhi110052, India. Tel.: 713838

Prined at Thakkar Printing Press, 2588, Basti Punjabian, Subzi Mandi, Delhi 110 007 Phone> 254058